प्रवचन-१६०, श्लोक- २३४-२३५, शुक्रवार, ज्येष्ठ शुक्ल ८, दिनांक २०-०६-१९८०

नियमसार, २३४ कलश है। कलश २३४।

गुरु के सान्निध्य में... बहुत संक्षिप्त में बहुत भरा है। गुरु कैसे होते हैं ? और उनके निकट में जाकर वे धर्म क्या कहते हैं, वह इसे प्राप्त करना चाहिए। **गुरु के सान्निध्य में निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके,...** यह धर्म की व्याख्या। निर्मल सुखकारी- अतीन्द्रिय आनन्द का-सुख का देनेवाला, ऐसा जो धर्म, गुरु ने ऐसा उसे कहा हुआ और गुरु होते हैं, वे ऐसा सबको कहते हैं। दूसरी बात नहीं। धर्म के लिये गुरु निर्मल आनन्दकारी धर्म को प्राप्त करने की बात करते हैं।

अतीन्द्रिय आनन्द का मूल स्वरूप है, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का सहजात्मस्वरूप, उस अतीन्द्रिय आनन्द को पर्याय में पर से विमुख होकर, स्व से सन्मुख होकर, निर्मल आनन्दकारी धर्म को प्राप्त करे—ऐसा गुरु का उपदेश है। जैन गुरु का यह उपदेश। निर्मल आनन्द की प्राप्ति कर। आहाहा! इसके अतिरिक्त दूसरी बातें हों, वह जानने की (है)। वस्तु यह है।

निर्मलानन्द प्रभु, निर्मल अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु! आहाहा! सबसे समेटकर निर्मल आनन्दकारी धर्म को प्राप्त कर। इसका नाम धर्म। गुरु भी यही बताते हैं और वह भी प्राप्त यही करता ही है। राग से धर्म होता है—ऐसा गुरु कभी कहते नहीं। आहाहा! व्यवहार से, दया, दान से धर्म होता है - ऐसा कभी नहीं कहते। आहाहा! निर्मल अतीन्द्रिय आनन्द, विकल्परहित चीज़ जो निर्विकल्प है, उसकी निर्विकल्प आनन्द की पर्याय में प्राप्ति (होवे, ऐसा) यह गुरु का उपदेश और यह पूरे सिद्धान्त का सार है। आहाहा!

इतने शब्दों में बहुत भर दिया है। एक तो गुरु, उनके निकट में सुनने-समझने जाए और वह भी सुनते हुए यह सुनता है (कि) निर्मल आनन्दकारी धर्म है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान, उसके सन्मुख देख। तुझे अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त होगा, वह धर्म है। ऐसे जैन गुरु का यह उपदेश है। आहाहा!

एक तो गुरु की व्याख्या की। सुननेवाला निकट आकर-सान्निध्य में आकर सुनता है। वे यह सुनाते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति कर, प्रभु! आहाहा! तू अतीन्द्रिय

आनन्दस्वरूप है और अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय में आनन्दकारी ऐसा जो धर्म, उसमें दुःख का द्वेष नहीं, कष्ट नहीं, सहन नहीं (करना), जिसमें परीषह-उपसर्ग सहन नहीं करना पड़ता। आहाहा! ऐसे निर्मल आनन्दकारी धर्म को प्राप्त कर। आहाहा! गाथा बहुत ऊँची है। आहाहा! पूरे जैनदर्शन का मक्खन कहा है। आहाहा!

बारह अंग में गुरु ने अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति स्वसन्मुख होकर करना, ऐसा बाहर अंग में है और गुरु यह कहते हैं और उन गुरु को गुरु कहा जाता है। किसी भी राग से और व्यवहार से धर्म मनावे, वे गुरु, जैन-गुरु नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात है। यह दया पाले, व्रत करे, भक्ति करे, पूजा करो, यात्रा करो - ऐसा कुछ कहा नहीं। आहाहा! क्योंकि वह तेरा स्वरूप नहीं है। यह विकल्प है, वह तेरा स्वरूप नहीं है। तेरा स्वरूप है, वह समझाया और उनके उपदेश में उस आनन्द की प्राप्ति कर। जो शक्ति और स्वभावरूप अतीन्द्रिय आनन्द है, उसे व्यक्तरूप से पर्याय में आनन्द की प्राप्ति कर। अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति कर, इसका नाम धर्म है। आहाहा! दूसरा यह करना-फरना कहाँ? मन्दिर बनाना और पूजा और...

मुमुक्षु :- यह तो अपने हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हो गया नहीं। यह हो भले, परन्तु यह कोई धर्म नहीं। यह व्यवहार बीच में आता है। पूर्ण वीतराग न हो, तब तक आता है, तो भी यह कोई वस्तु नहीं है। आहाहा!

जैन परमेश्वर अनन्त तीर्थंकर, अनन्त जिनेश्वर, केवली, मुनि, आचार्य, उपाध्याय और साधु, इन अनन्त मुनियों का यह उपदेश है। आहाहा! इससे विरुद्ध कुछ भी करे तो वह जैनधर्म नहीं है। वह जैनधर्म का गुरु भी नहीं है। आहाहा!

गुरु के सान्निध्य में... आहाहा! **निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके,...** वापस बात ऐसी की है कि शिष्य यह सुनकर प्राप्त करता है। वहाँ का वहीं नहीं रखता - ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जो इसे सुनने को मिला, गुरु ने कहा, वह प्राप्त करता है। ऐसा नहीं कि सुनकर निकाल डाला। इसलिए **धर्म को प्राप्त करके,...** ऐसी भाषा है। आहाहा! गजब बात है। एक लाईन में कितना भरा है! आहाहा! अब वे छह आवश्यक और... आवश्यक में आयेगा। पहले से ही आता है। व्यवहार छह आवश्यक के विरुद्ध—

यह आवश्यक में तीन बार आता है। आहाहा! व्यवहार आवश्यक जो हैं, वह तो राग है। आहाहा! और निश्चय आवश्यक से व्यवहार आवश्यक की क्रिया, वह प्रतिपक्ष है, विरुद्ध है। आहाहा! जो विरुद्ध है, वह साधन नहीं हो सकता। व्यवहार और निश्चय दोनों प्रतिपक्ष हैं। जो प्रतिपक्ष है, उस विरुद्ध से साधन नहीं हो सकता। ऐसा इतने शब्दों में कहा है। आहाहा!

धर्म को प्राप्त करके,... अब क्या किया फिर इसने? **ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा नष्ट की है...** ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा नष्ट की है। मुनि स्वयं भी अब शामिल होते हैं। आहाहा! अन्तर जो ज्ञानस्वरूपी भगवान, उस ज्ञान को पकड़कर, ज्ञान में एकाग्र होकर मोह की महिमा, समस्त मोह की महिमा, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग का भी मोह छोड़ दिया। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि अपनी बात भी करते हैं। हमने भी गुरु के निकट ऐसा सुना और **ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा...** परसन्मुख के झुकाव की महिमा। चाहे तो पंच परमेष्ठी हो, उनके ओर के झुकाव की महिमा नष्ट की है। आहाहा! स्वद्रव्य आश्रय की लीनता के समक्ष परद्रव्य के आश्रय को छोड़ दिया है। आहाहा! ऐसा यह लोगों को एकान्त लगता है। बापू! व्यवहार होता है। व्यवहार, नय है। नय है तो उसका विषय होता है, परन्तु आदरणीय नहीं। आहाहा! निश्चय और व्यवहार दोनों नय हैं। नय का विषय है। नहीं है - ऐसा नहीं है। परन्तु दो हैं, तब एक आदरणीय और एक आदरणीय नहीं है। वरना तो दो पड़े कैसे? दोनों आदरणीय होवें तो दो पड़े कैसे? आहाहा! आचार्य ने कितना समाहित किया है! यह तो मुनि हैं - टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। आहाहा!

ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा... आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भव की भी महिमा छोड़ दी है। आहाहा! जिस भाव से बन्ध पड़े, उस भव की महिमा छोड़ दी है। आहाहा! और अबन्धस्वरूप भगवान आनन्द की मूर्ति की प्राप्ति के प्रयत्न में हूँ। आहाहा! उसकी **महिमा को नष्ट किया है, ऐसा मैं...** आहाहा! ऐसा समस्त मोह। किसी भी अंश में पर-सन्मुख के झुकाववाला राग, शास्त्र का वाँचन या पठन या यह सब पर-सन्मुख की महिमावाला मोह, परसन्मुख का मोह छोड़ दिया है। स्वसन्मुख के अन्दर सावधानीरूप से आया है। आहाहा! मोह का अर्थ सावधान होता है। परसन्मुखता की सावधानी पूर्ण छोड़ दी है और स्वसन्मुख की सावधानी पूर्ण लाया हूँ। आहाहा! भाषा समझ में आती है? आहाहा!

मुमुक्षु :- यह बात तो यहाँ ही सुनने को मिलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यही बात है। मार्ग तो यह है। वाद और विवाद करनेयोग्य नहीं है। वस्तुस्थिति यह है।

भगवान चैतन्यरत्न, जिसकी कीमत करने से जगत की कीमत उड़ जाती है, ऐसा कहते हैं। जिसकी कीमत करने से, अन्दर अनुभव करने से पर की महिमा अर्थात् पर की ओर की किसी चीज़ की कीमत, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उसकी महिमा भी छूट जाती है। आहाहा! भाषा सादी है परन्तु प्रभु! वस्तु बहुत ऊँची है। वस्तु तो यह है प्रभु! आहा! तेरी प्रभुता का पार नहीं, नाथ! कहते हैं तेरी प्रभुता तूने गुरु से सुनी। सुनकर ज्ञान द्वारा स्वसन्मुख होकर, परसन्मुखता के समस्त मोह का नाश किया है। आहाहा! स्व का आश्रय लेने को गुरु ने कहा था। क्योंकि निर्मल आनन्द की पर्याय स्वाश्रय बिना प्रगट नहीं होती और निर्मल आनन्द की पर्याय प्रगट हुए बिना धर्म नहीं है। आहाहा! इसलिए कहते हैं, प्रभु! तेरी प्रभुता की सन्मुखता हो, ऐसा गुरु ने कहा, तब इसने भी पर की ओर की सब सन्मुखता नष्ट कर दी है। आहाहा!

ऐसा मैं,... ऐसा मैं। स्वयं अपने को डालते हैं। आहाहा! सब ऐसा कहते हैं कि यह कहीं निश्चय समकित की खबर नहीं पड़ती। आहाहा! प्रभु! प्रभु! दिगम्बर में ऐसा चलता है। निश्चय समकित की खबर नहीं पड़ती। अर र! यहाँ कहते हैं कि मैं ऐसा हूँ—यह मुझे खबर पड़ी है। **समस्त मोह की महिमा नष्ट की है ऐसा मैं,...** आहाहा! वह ज्ञानमति, वह महिला यहाँ तक चढ़ गयी थी कि अभव्य और काललब्धि अपनी है या नहीं, यह भगवान जाने, अपने को खबर नहीं पड़ती। अर र! अभव्य और कालब्धि, यह भगवान जाने कि यह अभव्य है या भव्य है। अखबार में आया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि मैंने मेरे स्वभाव की सावधानी द्वारा मोह को नष्ट किया है—ऐसा मैं जानता हूँ, मुझे खबर है। भगवान को पूछने जाना पड़े, ऐसा नहीं। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा सुना नहीं कभी वहाँ। भटका भटक (करता है)। आहाहा! ऐसा मार्ग है। आहाहा! भाग्यवान को कान में पड़े, ऐसी बात है। यह तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर की ध्वनि है। आहाहा! वीतरागी मुनि दिगम्बर सन्त वीतरागी केवली के मार्गानुसारी केवली की बातें स्वयं करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु :- उनका माल बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उनका माल, परन्तु मैं हूँ - ऐसा जानकर बताते हैं। (मैंने) इस मोह को नष्ट कियाहै - ऐसा मैं हूँ। होगा और होऊँगा ऐसा नहीं। आहाहा! देखो न! यह वीतराग की वाणी! रोकड़ी-नगद। आहाहा! धर्म करो, भविष्य में फलेगा, कहीं देवलोक में जाएगा। धर्म तो यहाँ यह वस्तु धर्मी है। उसके सन्मुख होकर मोह को नष्ट करने से धर्म होगा, वह यहाँ होता है। ये पंचम काल के मुनि ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिन्हें केवली का विरह पड़ा है। अभी तीर्थंकरों का विरह पड़ा है। वे ऐसा कहते हैं। आहाहा! हम ऐसा कहते हैं कि हमने गुरु के निकट सुनकर ज्ञान द्वारा समस्त मोह का नाश किया है, ऐसा मैं हूँ। आहाहा! एक लाईन... आहाहा!

अब राग-द्वेष की परम्परारूप से परिणत चित्त को छोड़कर,... चित्त को अन्दर पुण्य और पाप के भाव होते हैं, उनकी परम्परा होती है, उसे छोड़ देता हूँ। आहाहा! किसी को ऐसा लगता है कि अन्दर शुभ चित्त आवे, राग (से) तो परम्परा से कल्याण होगा। शास्त्र में ऐसा आवे, शुभ की परम्परा। वह तो आवे, उसका अभाव करके होगा - ऐसा बतलाते हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, राग-द्वेष की, चाहे तो व्यवहाररत्नत्रय का राग, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का राग... आहाहा! उसकी जो परम्परा; ऐसा परिणत चित्त। राग-द्वेष की परम्परा से परिणमता था, ऐसा चित्त, उसे छोड़कर। आहाहा! ऐसा मार्ग है। आहाहा! सुनने को मिलता नहीं। अरे रे! मनुष्यपना कब आयेगा? मनुष्यपना चला जाएगा। आत्मा तो अनादि सत्ता है तो उसका सत्तापना तो रहेगा। कहाँ रहेगा? आहाहा! कुछ भी भान नहीं, वह रहेगा कहाँ? भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि हमें खबर है कि हम आत्मा हैं। हम आत्मा में रहेंगे। आहाहा! हम चित्त की परिणति में, राग-द्वेष की परम्परा जो होती है, उसे छोड़ देते हैं। आहाहा! शास्त्र में ऐसा आवे कि इससे परम्परा से होता है, यह बात हम छोड़ देते हैं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! निश्चयवाले को व्यवहार परम्परा से आता है। व्यवहार से ऐसी बात आती है। निश्चयवाले को व्यवहार है, वह परम्परा से मुक्ति देता है - इसका अर्थ कि उसका अभाव करके। यहाँ तो कहते हैं कि उस परम्परा की बात को मैं छोड़ देता हूँ। आहाहा! यह राग और शुभराग परम्परा से लाभ होगा, निश्चयवाले को, हों! निश्चय नहीं, उसे

व्यवहार बिल्कुल नहीं। आहाहा! अमृत भरा है। आहाहा! यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। आहाहा! यह तो भगवान की भागवत कथा है।

अन्दर महिमावाला नाथ पड़ा है। उसके सन्मुख देख न, प्रभु! वीतराग का उपदेश यह है। आहाहा! अनन्त तीर्थंकरों, सन्तों, मुनियों,... यह आ गया है। ऋषभदेव से लेकर महावीर तक अन्तर की भक्ति करके मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। आहाहा! योगभक्ति अर्थात् स्वरूप में जुड़ान। आनन्द का नाथ प्रभु, उसके स्वरूप में जुड़ान से अनन्त तीर्थंकर मुक्ति को प्राप्त हुए हैं और ऐसा कह गये हैं... आहाहा! कि स्वरूप में जुड़ान कर, योग कर। जिस चित्त का जुड़ान राग के साथ ऐसे है, पर्यायबुद्धि में अनादि से ऐसे है, उसे ऐसे गुलांट मार। जहाँ भगवान पूर्णानन्द का नाथ है, वहाँ उस पर्याय को झुका ले। आहाहा! अरे! ऐसी बात! आहाहा!

सभी भगवान होओ! ऐसा आया नहीं था? आहाहा! ऊपर आया, देखो! **संसार की घोर भीति से सर्व जीव...** ऊपर एक लाईन। **नित्य वह उत्तम भक्ति करो।** आहाहा! यह ३४, ऊपर ३३। ३३ में है वह। **संसार की घोर भीति से सर्व जीव...** आहाहा! कोइ बाकी न रहो, प्रभु! सब प्रभु हो जाओ। आहाहा! सब भगवान हो जाओ। आहाहा! तुझे हीन दशा से देखना हमें ठीक नहीं पड़ता। आहाहा! तू प्रभु है, पूर्ण है। इसलिए सर्व जीव भव्य और अभव्य सभी डाले हैं। आहाहा! ऐसे न रहो संसार में। परसन्मुख की किसी भी वृत्ति में न रहो, प्रभु! अन्दर भगवान विराजता है न! पूर्णानन्द का नाथ अनन्त चैतन्य रत्नाकर, चैतन्य के रत्न का आकर—समुद्र है। आहाहा! प्रभु! वहाँ जा न! यह अनन्त तीर्थंकरों का उपदेश है न! भले पंचम काल में भगवान का विरह पड़ा, परन्तु उनकी वाणी का विरह नहीं है। आहाहा! पुकार करते हैं। आहाहा!

राग-द्वेष की परम्परारूप से परिणत चित्त को छोड़कर, शुद्ध ध्यान द्वारा समाहित... आहाहा! आनन्दस्वरूप जो भगवान, आनन्दस्वरूप परमात्मा तू है, भाई! उसमें एकाग्र होकर समाहित हो। आहाहा! **शुद्ध ध्यान द्वारा समाहित (-एकाग्र, शान्त) किये हुए मन से...** आहाहा! **आनन्दात्मक तत्त्व में स्थित रहता हुआ,...** आहाहा! आनन्दस्वरूप आत्मा, आनन्दस्वरूप तत्त्व, अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, ऐसा तत्त्व भगवान, वह अपूर्ण नहीं है, विरुद्ध नहीं है, अशुद्धता नहीं है। उस चीज़ को किसी की अपेक्षा नहीं है। ऐसी चीज़ प्रभु! अन्दर पड़ी है न! आहाहा! ऐसा आनन्दात्मक, आनन्दस्वरूप प्रभु है न! ऐसा कहते हैं। आहाहा! पहले यह कह गये थे कि **निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके...** आहाहा!

ऐसा मार्ग कठिन लगे। ऐसा होगा, परन्तु कुछ साधन होगा या नहीं? यह साधन है, बापू! प्रभु! इसमें साधन नाम का गुण है। करण नाम का एक अनादि गुण प्रभु में है। ज्ञान और आनन्द गुण है, ऐसा करण नाम का गुण-साधनगुण है। उसकी दृष्टि करने से वह करण नाम का गुण ही तुझे साधन होगा। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय साधन-फाधन कुछ है नहीं। आहाहा! और इस बात का पुकार करते हैं। आहाहा! अभी आवश्यक में आयेगा। उन ज्ञानमति ने कहा है न? नियमसार-सार का अर्थ मिथ्यात्वरहित लेना। इन लोगों ने अर्थ किया है कि नियमसार से विरुद्ध जो व्यवहार आचरण, व्यवहार दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसका अभाव करके सार कहा है। नियमसार। और नियमसार इसके लिये कहा है कि मिथ्यात्व का त्याग करके मात्र दर्शन-ज्ञान-चारित्र रहे। यहाँ ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करके... आहाहा! इनसे विरुद्ध व्यवहार का परिहार कर। आहाहा! अभी आयेगा। आवश्यक में आयेगा। पहले ही आयेगा। आवश्यक (अधिकार में) पहली लाईन है, पहले पृष्ठ की। वह लाईन देखो!

व्यवहार छह आवश्यकों से प्रतिपक्ष शुद्धनिश्चय का अधिकार कहा जाता है। है न? **व्यवहार छह आवश्यकों से प्रतिपक्ष...** व्यवहार से निश्चय होता है, प्रतिपक्ष होता है। शत्रु से होगा? व्यवहार से निश्चय होगा? बापू! व्यवहार और निश्चय प्रतिपक्ष है। **व्यवहार छह आवश्यकों से प्रतिपक्ष शुद्धनिश्चय...** है। आहाहा! अरे रे! लोगों को कुछ... वीतराग केवलज्ञानी परमात्मा कहीं रह गये और उनके नाम से कुछ चढ़ा दिया। लोगों को विचारों को जोड़ दिया। अरे रे! ऐसा समय... यह मनुष्यपना कब मिले, भाई! और उसमें वीतराग का मूल तत्त्व आत्मा आनन्दस्वरूप (वह कहाँ मिले)? यह कहा न?

आनन्दात्मक तत्त्व में स्थित रहता हुआ,... आहाहा! करनेयोग्य यह है। आनन्दस्वरूप भगवान, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप। ऊपर के शरीर और वाणी, मन को न देख, नाथ! तू अन्दर भगवान है न! आहाहा! पर्याय की दृष्टि छोड़ दे। पर की तो छोड़ दे, परन्तु पर्याय की है, उसे छोड़ दे। पर्याय को अन्दर में झुका ले। आहाहा! जहाँ घर भरा है। आहाहा! ऐसा **आनन्दात्मक तत्त्व...** देखा? ऐसा आनन्दस्वरूप आत्मा। आहाहा! **स्थित रहता हुआ,...** उस आनन्दस्वरूप आत्मा में स्थित रहता हुआ। प्रभु! बात कठिन लगे, अनजानी लगे, सूक्ष्म लगे, परन्तु प्रभु! मार्ग तो यह है। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। जन्म-मरण से छूटने का दूसरा कोई रास्ता नहीं है। आहाहा! व्यवहार-फ्यवहार सब बन्ध का

कारण है। वह मुक्ति का कारण नहीं होता, नाथ! आहाहा! आनन्दस्वरूप तत्त्व, ऐसा कहा न? राग, पुण्य, दया, दान वह तो दुःखरूप है, राग है। राग तो दुःखरूप है। भले व्यवहाररत्नत्रय हो। परन्तु व्यवहाररत्नत्रय राग है और राग दुःखरूप है, आकुलता है। वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा! आया। बहुत पहले आया। सरस आ गया। पहले-पहले आया उसमें। आहाहा!

ऐसा मार्ग है, उसे तेरे ज्ञान पर तो ले। लोग नहीं कहते कि भाई! हम कहते हैं, उसे ध्यान पर तू सुन, ध्यान में तो ले, लक्ष्य में तो ले। आहाहा! इसी तरह तीन लोक के नाथ वीतराग परमेश्वर की वाणी, वह सन्त स्वयं अनुभव करके, स्वयं अनुभव करके कहते हैं। इन दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं है। आहाहा! ऐसी बात कहीं है नहीं। आहाहा! कठिन लगे, भाई! आहाहा! पूर्व के सम्प्रदाय में पड़े हों, उसका आग्रह हो, उसमें दूसरी बात सुनी न हो, इससे उस सम्प्रदाय को खोटा कहना, करना कठिन पड़ता है, प्रभु! आहाहा! दिगम्बर सम्प्रदाय के अलावा कोई जैनधर्म कहीं है ही नहीं। आहाहा! शान्ति से सुने, जरा-सा आग्रह छोड़कर, प्रभु! सुन! ऐसी बात वीतराग के अतिरिक्त, दिगम्बर जैनधर्म के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा!

आनन्दात्मक तत्त्व... आनन्द-आत्मक, आनन्दस्वरूप तत्त्व। आहाहा! भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप तत्त्व है। उसमें **स्थित रहता हुआ,...** उसमें स्थित रहता हुआ। आहाहा! **परब्रह्म में (परमात्मा में) लीन होता हूँ।** पूर्ण दशा में लीन हो जाऊँ। उस आनन्दात्मक तत्त्व में रहता हुआ पूर्णानन्द की प्राप्ति कर लूँ। दूसरा कोई उपाय नहीं है। पूर्णानन्द परमात्मा सिद्ध होने का यह उपाय है। आहाहा! आनन्दस्वरूप तत्त्व। आनन्दस्वरूप कहा। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, प्रभु! तेरे आनन्द के लिये बाहर में देखना नहीं है। मृग की नाभि में कस्तूरी, उस मृग को कस्तूरी की कीमत नहीं। इसी तरह इसके अन्दर में भगवान आत्मा में (आनन्द) भरा है। आहाहा! उसकी इसे कीमत नहीं और उसके ऊपर के यह सब दिखाव की महिमा, विस्मय और आश्रयता महिमा इसे दिखायी दे, वहाँ इस महिमा का अनादर करता है। अपनी महिमा का आदर नहीं करता और यहाँ आदर करने जाए, वहाँ यहाँ (स्वभाव का) अनादर हो जाता है। आहाहा!

आनन्दस्वरूप तत्त्व में... आहाहा! **स्थित रहता हुआ,...** आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान में स्थित-स्थिर रहता हुआ **परब्रह्म में (परमात्मा में) लीन होता हूँ।** परमब्रह्म

सिद्धपने को प्राप्त करता हूँ। आहाहा! परमब्रह्म परमात्मा की इस प्रकार प्राप्ति होती है। एक लाईन में तो कितना समाहित कर दिया है। आहाहा!

मुमुक्षु :- वह तो आप निकाल सकते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री :- अन्दर है। आहाहा!

परमानन्दस्वरूप प्रभु में स्थित रहता हुआ मैं पूर्णता को प्राप्त करूँगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? लक्ष्य में तो ले, प्रभु! बात को ध्यान में तो ले। आहाहा! वस्तु का ऐसा स्वरूप है और उस स्वरूप का साधन किये बिना मुक्ति कभी नहीं होती; संसार का नाश नहीं होता। आहाहा! और संसार में तो चौरासी के अवतार (किया करता है)। आहाहा!

आचार्य कहते हैं, मैं भूतकाल के चौरासी लाख के अवतारों को जहाँ याद करता हूँ तो चोट लगती है। आहाहा! ऐसा मुनिराज कहते हैं। आहाहा! गत भव में भव किये... आहाहा! सड़ी हुई बिल्ली, सड़ा हुआ चूहा, सड़े हुए हाथी-घोड़ा और कहाँ का कहाँ अकेला, कोई सामने देखनेवाला नहीं। अकेला पड़ा। धूप सिर पर पड़ी। धकधकती धूप, अग्नि लगी। आसपास घास में अग्नि लगी, उसमें स्वयं सुलग गया। आहाहा! प्रभु! ऐसे अवतार अनन्त किये हैं। आहाहा! ऐसे अवतार से अब बस होओ। ऐसे भव अब न हों। आहाहा! सभी जीवों के लिये ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऊपर आ गया न? सर्व जीव-सभी जीव। आहाहा!

द्रव्यसंग्रह में यह कहा है। अपायविचय की व्याख्या है। द्रव्यसंग्रह, अपायविचय। वहाँ कहा है, मैं तो आठ कर्म से रहित परमात्मा होनेवाला हूँ; सभी आत्मायें आठ कर्मों से रहित होओ, भगवान हो जाओ, सब परमात्मा होओ—ऐसा धर्मी विचार करता है। आहाहा! द्रव्यसंग्रह में है। द्रव्यसंग्रह में पाठ है। जहाँ अपायविचय, संस्थानविंचय, विपाकविचय (का अधिकार चला है), उसमें अपायविचय में यह अर्थ है। आहाहा! प्रभु! सभी भगवान होओ! आहाहा! कोई अपूर्ण न रहो, कोई गति में न रहो। आहाहा! ऐसा धर्मी विचार करते हुए, स्वयं के लिये तो ठीक, परन्तु पर के लिये भी ऐसा (भाता है)। सभी भगवान होओ, भाई! आहा! प्रभु के सामने विरोध न करो। आहाहा! अन्दर आनन्द का स्वरूप विराजता है। उससे विरुद्ध न कर, प्रभु! पर में सुख मानकर उल्लास न कर, नाथ! तुझमें आनन्द भरा है न! किस चीज़ में देखकर तुझे उल्लास आ जाता है? आहाहा! यह पर में उल्लास

आने पर, प्रभु! तेरे स्वरूप का अनादर हो जाता है। आनन्द का सागर... आनन्दात्मक कहा न? यह आनन्दस्वरूप ही तत्त्व है। आहाहा! सर्वांग आत्मा आनन्द से भरपूर भगवान असंख्य प्रदेश में पूर्णानन्द से भरपूर भगवान में स्थित रहता हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु :- स्थित रहता हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री :- स्थित-अन्दर एकाग्रता।

मुमुक्षु :- स्थित रहता हुआ, यह श्रेणी और लीन होना, यह केवलज्ञान?

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह तो यहाँ स्थित रहता हुआ। श्रेणी-फ्रेणी यहाँ कुछ नहीं। अन्दर में स्थिर हो तो पूर्ण केवलज्ञान। यह सब शास्त्र की भाषा। यह तो संक्षिप्त सार। आहाहा!

आनन्दात्मक तत्त्व में स्थित रहता हुआ, परब्रह्म... को प्राप्त कर लूँगा, ऐसा कहते हैं, देखो! **परब्रह्म में (परमात्मा में) लीन होता हूँ।** मैं तो परमब्रह्म आत्मा में लीन होता हूँ। परब्रह्म हो जाऊँगा। आहाहा! श्रेणी माँडना, अमुक माँडना, यह तो सब शास्त्र की भाषा है। श्रेणी माँडू, यह भी वहाँ कहाँ है? यह तो वीतराग बात करे कि यहाँ ऐसी श्रेणी होती है। उसे कहाँ श्रेणी-फेणी? वह तो अन्दर स्थित है, बस! वस्तु है, आनन्दस्वरूप है, उसमें स्थिर है। फिर उसे अमुक धारा को श्रेणी कही, अमुक धारा को उपशम और अमुक को क्षपक (कही)। आहाहा! अनुभव में यह कुछ है नहीं। यह श्रेणी है और यह वह है और यह है। आहाहा! इसलिए यहाँ कहा (कि) स्थित रहता हुआ, बस! आहाहा! कठिन लगे। कितनों ने तो सुना भी नहीं होगा। कहीं यह बात है ही नहीं। सर्वत्र गड़बड़... गड़बड़... गड़बड़... ओहोहो! कुछ न कुछ सहारा व्यवहार का, निमित्त का (लेना चाहते हैं)। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि यहाँ आत्मा में व्यवहार और निमित्त का तो अभाव है। आनन्दस्वरूप है, उसमें दु:खस्वरूप है ही नहीं। आहाहा! उसमें स्थित होता हुआ। ओहोहो! एक लाईन में पौण घण्टा हुआ! जितना निकालें, उतना कम। आहाहा!

लीन होता हूँ। आहाहा! स्वयं को खबर पड़ती है कि मैं इसमें लीन होता हूँ। भगवान को पूछे कि महाराज! ऐसे मैं अब परमात्मा होने के योग्य हूँ या नहीं? यह पूछने की आवश्यकता नहीं है, कहते हैं। आहाहा! स्वयं ही भगवान जागृत हुआ है। आहाहा! उसमें स्थित होता हुआ मैं परमब्रह्म हो जाऊँगा। आहाहा! कल भी यह बात चली थी। इतनी आज चली। पोण घण्टे। आहाहा!

श्लोक-२३५

(अनुष्टुप्)

निर्वृत्तेन्द्रियलौल्यानां तत्त्वलोलुपचेतसाम् ।
सुन्दरानन्दनिष्यन्दं जायते तत्त्वमुत्तमम् ।।२३५।।

(वीरछन्द)

नष्ट हुई इन्द्रिय लोलुपता, तत्त्व लोलुपी जिनका चित्त।
सुन्दर आनन्द झरता-उत्तम तत्त्व उन्हें होता है व्यक्त॥२३५॥

[श्लोकार्थः] इन्द्रियलोलुपता जिनको निवृत्त हुई है और तत्त्वलोलुप (तत्त्व प्राप्ति के लिए अत्यन्त उत्सुक) जिनका चित्त है, उन्हें सुन्दर-आनन्दझरता उत्तम तत्त्व प्रगट होता है॥२३५॥

श्लोक- २३५ पर प्रवचन

२३५ (श्लोक)।

निर्वृत्तेन्द्रियलौल्यानां तत्त्वलोलुपचेतसाम् ।
सुन्दरानन्दनिष्यन्दं जायते तत्त्वमुत्तमम् ।।२३५।।

श्लोकार्थ : इन्द्रियलोलुपता जिनको निवृत्त हुई है... यह भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय सब चीज़ पर है। आहाहा! उसकी जिसे लोलुपता, उनकी ओर के झुकाव का उत्साह जिसे निवृत्त हुआ है। आहाहा! **इन्द्रियलोलुपता जिनको निवृत्त हुई है...** आहाहा! जिसे सुनने का भी अब रहा नहीं। अतीन्द्रिय भगवान अन्दर स्थित है, वहाँ जाता है। आहाहा! समयसार की ३१वीं गाथा में 'इन्द्रिय को जीतकर'—ऐसा आया है न? उसका अर्थ ऐसा किया कि भगवान के सन्मुख देखना, वह इन्द्रिय है। भगवान की वाणी सुनना, वह इन्द्रिय है। उस इन्द्रिय को जीतकर अर्थात् उसका लक्ष्य छोड़कर। आहाहा! ३१वीं गाथा है। '**जो इंदिये जिणिता**' इस '**इंदिये जिणिता**' के तीन अर्थ किये हैं—द्रव्येन्द्रिय जड़; भावेन्द्रिय क्षयोपशम और दूसरी चीज़ के सामने भगवान और भगवान की वाणी, वह भी इन्द्रिय। यह सब इन्द्रिय में तथा एक ओर भगवान अनीन्द्रिय आत्मा। आहाहा!

इन्द्रियलोलुपता... अर्थात् इन्द्रियों की ओर का झुकाव। पाँचों इन्द्रियों की ओर का झुकाव। आहाहा! **जिनको निवृत्त हुई है...** आहाहा! **और तत्त्वलोलुप (तत्त्व प्राप्ति के लिए अत्यन्त उत्सुक) जिनका चित्त है,...** तत्त्व अर्थात् चैतन्य भगवान आनन्द में जिसे उत्सुकता है। उसमें उत्साह बढ़ गया है। अतीन्द्रिय आनन्द में उत्साह-वीर्य बढ़ गया। उत्साह और वीर्य अतीन्द्रिय आनन्द में आ गया। उत्साह और वीर्य परसन्मुख था, वह छूट गया। आहाहा!

ऐसा मार्ग! यह तो कोई वीतराग का मार्ग होगा? कोई ऐसा कहता है कि यह नया निकाला है। सोनगढ़वालों ने नया निकाला है। अरे! भगवान! नया (नहीं है)। यह तो अनादि का है। सीमन्धरस्वामी भगवान विराजते हैं, वे कह रहे हैं। वहाँ से यह सब आया है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। वे भी स्वयं ऐसा कहते हैं कि यह शास्त्र मैंने मेरे लिये बनाया है। समयसार, प्रवचनसार में ऐसा नहीं कहा, परन्तु इसमें तो ऐसा कहा है कि यह शास्त्र मैंने मेरे लिये बनाया है। अन्तिम गाथा है - १८७। आहाहा! दुनिया जाने, न जाने, यह बात प्रसिद्ध हो परन्तु मैंने तो मेरे लिये बनाया है। आहाहा! १८७ गाथा। अन्तिम (गाथा)।

'**णियभावणाणिमित्तं**' १८७। अन्तिम गाथा। '**णियभावणाणिमित्तं**' मेरी भावना के लिये '**मए कदं**' मैंने बनाया। '**णियमसारणामसुदं।**' नियमसार नाम का सूत्र मैंने मेरे लिये बनाया है। '**णच्चा जिणोवदेसं**' 'जिन' का उपदेश जानकर, अनन्त तीर्थंकरों ने कहा है, वह इसमें कहा है। ऐसा कहते हैं। अनन्त तीर्थंकरों ने कहा, वह इसमें है। '**पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं**' पूर्वापर दोष इसमें है नहीं। आहाहा! १८७ (गाथा) आहाहा! समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़। इसमें तो ऐसा कहा कि मैंने मेरे लिये यह बनाया है। आहाहा! तुम सुनो, समझो और अन्दर उतरो। आहाहा! मैंने तो मेरे लिये अनुभव में आगे बढ़ने के लिये मैंने तो बनाया है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

इन्द्रियलोलुपता जिनको निवृत्त हुई है... पाँचों ही इन्द्रिय की ओर का झुकाव जिसे छूट गया है। आहाहा! जीते जी मर जाना है। इन्द्रियों की ओर के झुकाव से मर जाना है। पाँचों इन्द्रियों की ओर के झुकाव से मर जाना है और अनीन्द्रिय की ओर जीना है। आहाहा! ऐसा है। **इन्द्रियलोलुपता जिनको निवृत्त हुई है और तत्त्वलोलुप (तत्त्व प्राप्ति के लिए अत्यन्त उत्सुक) जिनका चित्त है,...** आहाहा! अनीन्द्रिय भगवान में लोलुपता उसकी हुई है। यहाँ (इन्द्रियों में) लोलुपता टूट गयी है और यहाँ (आत्मा में) लोलुपता हुई है। यहाँ

तत्परता छूट गयी है और यहाँ तत्परता हुई है। यहाँ सावधानी छूट गयी है और यहाँ सावधानी हुई है। आहाहा! ऐसा है। इसमें पंचम काल और पंचम काल के श्रोता अप्रतिबुद्ध है और साधारण है, यह बात यहाँ देखने की नहीं है। आहाहा! सब भगवान है और भगवान होने के योग्य है। आहाहा! प्रभु! मैं होनेवाला हूँ, तू भी होओ न! तुम भी आत्मा हो न!— ऐसा कहते हैं। आप तो मेरी नात के, जाति के, कुल के हो। आहाहा!

इन्द्रियलोलुपता जिनको निवृत्त हुई है और तत्त्वलोलुप... दो बातें की हैं। इस ओर का आश्रय छूट गया है और इस ओर का आश्रय उत्पन्न हुआ है। आहाहा! चैतन्य भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर (है), उसकी लोलुपता बढ़ गयी है। आहाहा! उसकी तत्परता, उसके लिये उत्सुक जिसका चित्त है। आहाहा! परसन्मुख की उत्सुकता छोड़ दी है तथा भगवान आत्मा की ओर की उत्सुकता तत्पर हुई है। आहाहा!

उन्हें सुन्दर-आनन्दझरता... अब उसे क्या प्राप्त होता है? पर-सन्मुख का झुकाव पूर्ण छोड़कर अन्तर के झुकाव में आया है, उसे क्या प्राप्त होता है? **सुन्दर-आनन्दझरता उत्तम तत्त्व...** सुन्दर अतीन्द्रिय आनन्द झरता। आहाहा! जैसे पर्वत में से पानी झरे... आहाहा! कोई तो ऐसा कहता था कि इस मुर्दे में से पानी झरे। शान्तिभाई कहते थे। उन्हें जलाया न! उसमें से छूटता है। ओहो! रक्त का पानी होता होगा? मरते एकदम पानी-पानी-पानी पैर में से, पूरे शरीर में से पानी (निकले)। हम तो कभी गये नहीं। ९१ वर्ष में श्मशान में गये नहीं। श्मशान में कैसे जलाते हैं और कैसे हैं (देखा नहीं)। आहाहा! यह शान्तिभाई बात करते थे। आहाहा! रक्त है, उसका पानी होता है। आहाहा! पानी होकर छूट जाए। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, जिनका चित्त अन्दर ऐसे **उन्हें सुन्दर-आनन्दझरता...** आहाहा! वर्तमान पर्याय में सुन्दर आनन्द का अनुभव प्रगट झरता... आहाहा! शक्ति और सत्वरूप से अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। उसकी पर्याय में उसका झरता आनन्द। आहाहा! **उत्तम तत्त्व प्रगट होता है।** आनन्द झरता तत्त्व प्रगट होता है। अकेला ऐसे तत्त्व आत्मा... आत्मा—ऐसा नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट झरता आत्मा प्रगट होता है। आहाहा! पर की लोलुपता की तत्परता छोड़कर... भाषा (सादी) है, परन्तु इसका भाव कठिन है, भाई! और स्व में अन्दर की तत्परता होना, उसे सुन्दर आनन्द झरता, सुन्दर आनन्द की पर्याय का अनुभव उत्तम तत्त्व प्रगट होता है। उसे उत्तम तत्त्व होता है।

विशेष कहेंगे.... (*श्रोता :* प्रमाण वचन गुरुदेव!)